सद्ज्ञान : सुख का मूल

प्रो. (डॉ.) सोहन राज तातेड़,

पूर्व कुलपति सिंघानिया विश्वविद्यालय, राजस्थान

ज्ञान के बिना जीवन अधूरा है। कोई कार्य करने से पहले उसका ज्ञान होना आवश्यक है। जीवन के जितने क्षेत्र हैं उन सभी क्षेत्रों से सम्बन्धित विषयों का ज्ञान होना चाहिए। जीवन जीने के ज्ञान को सद्ज्ञान कहा जाता है। कबीरदासजी ने कहा है–

पोथी पढ़ि–पढ़ि जग मुआ पंडित भया न कोय,
ढ़ाइ अक्षर प्रेम का पढ़े सो पंडित होय।

ज्ञान के लिए सद्ज्ञान या आत्मज्ञान आवश्यक है। आत्मानुशासन सबसे बड़ा ज्ञान है। पढना–लिखना शिक्षा सदाचार से जो ज्ञान होता है वह आत्म ज्ञान में सहायक है। सद्ज्ञान वही करा सकता है जो स्वयं आत्मज्ञानी हो। सद्ज्ञान ईश्वर की कृपा से होता है। इस संसार में सभी प्राणी सुख चाहते हैं, दुःख कोई नहीं चाहता। फिर भी दुःख का सामना सबको करना पड़ता है। इसका कारण यह है कि पूर्वजन्म में कुछ ऐसे कर्म किये होते हैं जिनके फल के रूप में सुख दुःख प्राप्त होता रहता है। समय से रोटी, कपड़ा, मकान, शिक्षा और चिकित्सा की प्राप्ति सुख है। आत्मा ही सद्ज्ञान है। उसी का ज्ञान सबसे बड़ा सुख है। अन्तिम सत्य आत्मा है। आत्मा अनन्तज्ञान दर्शन और चारित्र के सुख का धाम है। मानव जिस सुख का अनुभव करता है वह उस सुख का बिन्दुमात्र है। प्रिय से मिलन सुख है। प्रिय से वियोग दुःख है। संयोग के साथ वियोग निश्चित है। जन्म और मृत्यु वास्तविक सत्य है। इसलिए जगत् के प्राणियों को सुख और दुःख चक्र के पहिये की तरह उनके जीवन में आते रहते हैं। सद्ज्ञान सद्भावना है। सद्भावना से समाज के सभी प्राणियों के बीच मैत्री भाव बना रहता है। इसी से सभी सुखी रहते हैं।

सद्भावना का अर्थ है अच्छी सोच, अच्छा विचार, अच्छा चिंतन, रचनात्मक और विधेयात्मक विचार। हम दूसरों के प्रति कैसा सोचते हैं, यह बहुत ही महत्वपूर्ण चीज है। विचार के साथ मानस से जो तरंगे निकलती हैं वह भी व्यक्ति को प्रभावित करती हैं। हमारे संसार में विचार विनिमय के साधन है मन, वाणी और शरीर। मन के द्वारा आदमी चिंतन करता है, वचन के

द्वारा चिंतन को व्यवहार में लाता है और शरीर के द्वारा उसका क्रियान्वयन करता है। जब हम किसी अनजान व्यक्ति को अन्धे को, लूले को, लंगड़े को जिससे कि हमारा कोई परिचय नहीं है, आदर के साथ उसको उसका मार्ग दिखलाते हैं, या उसके साथ सद्भावना पूर्वक बात करते हैं तो उसको भी अच्छा लगता है और आत्मीयता प्रतीत होती है। मन, वाणी और शरीर का संयम सद्भावना को व्यक्त करता है। सद्भावना एक रचनात्मक भावना है। सद्भावना में सहनशीलता का गुण होना चाहिए। सद्भावना मानव का सबसे बड़ा गुण है। जिस मानव के अंदर यह गुण रहता है वह महानज्ञानी कहलाता है। जो व्यक्ति जितना सहन करके चलता है उसका चरित्र उतना ही ऊंचा होता है। चरित्र वह हीरा है जो टूटकर जुड़ता नहीं। चरित्र निर्माण मानव की स्वाधीन प्रक्रिया है। चरित्र ही ऐसा है जिसे मानव निर्मल बना सकता है। यह उसके अपने अधिकार का विषय है। एक ही बात व्यक्ति के अपने हाथों में है, और वह है अपने आपको बदलना। यह कैसी विडंबना है कि जो मानव कर सकता है उसके लिए ही कहा करता है कि मैं यह नहीं कर सकता। चरित्र निर्माण के संबंध में पहली आवश्यकता है, व्यक्ति अपनी आत्म–शक्ति को पहचाने। उसके अंदर एक अनंत शक्ति का स्रोत निरंतर प्रवाहित है, इस ध्रुव सत्य को आत्मसात कर लिया जाए। ध्यान धारणा द्वारा अपने–आपको अंतर पुष्ट करने की एक प्रबल आवश्यकता है। सद्भावना का अपने आप में अनुभव एक ऐसी जबर्दस्त प्रक्रिया है कि वह जीवन के प्रति समस्त दृष्टिकोण को बदल देती है। एक जगह जन्म लेने और पलने वाले व्यक्तियों में भी बड़ा भारी अंतर पाया जाता है। एक शेर की तरह जीता है और दूसरा गीदड़ की तरह दबा–दबा रहता है। आखिर यह अंतर क्यों? विभिन्न जीवन धाराओं का गहराई तक अध्ययन करने पर यह निष्कर्ष सामने आता है कि विभिन्न जीवन प्रक्रियाओं की मौलिक असमानता का कारण क्षेत्र, वातावरण, खान, पान, पहनावा मूल नहीं होकर मौलिक कारण आत्म–शक्ति का प्रकाट्य संबंधी अंतर है।

सत्य और न्याय आत्म स्वीकृत तत्व हैं और उसके प्रत्येक स्फुरण में वे ही जगमगाते हैं। वह भी एक जीवन होता है किन्तु जगमगाता हुआ। मानव जीवन समता और सहिष्णुता और सद्भावना का जीवन है। भौतिक सुख–दुःख का मानव–जीवन में कोई स्थान नहीं। उसकी सम्पूर्ण चर्यां आध्यात्मिक गुणों से परिपूर्ण होती है। जिसने संयम और सद्भावना के मार्ग को

स्वीकार कर लिया है, उसके जीवन में कठोर और मृदु संवेदनों का आना आवश्यक है। संयम के कठोर मार्ग पर चलने वाले साधक के जीवन में परीषहों का आना स्वाभाविक है, क्योंकि साधक का जीवन चारित्र की मर्यादाओं से बधा है। मर्यादाओं के पालन से मानव जीवन की सुरक्षा होती है। मर्यादाओं का पालन करते समय संयममार्ग से च्युत करने वाले कष्ट एवं संकट ही मानव की कसौटी हैं। इसलिये उन कष्टों को समभाव और सद्भावना से सहन कर वह अपने आचार का पालन करे। साधक के लिये परीषह बाधक नहीं साधक होते हैं। मानव में जीवन यापन के दो प्रमुख आयाम होने चाहिए– अहिंसा और कष्ट सहिष्णुता। कष्ट सहने का अर्थ शरीर, इन्द्रिय और मन को पीड़ित करना नहीं, किन्तु अहिंसा आदि धर्मों की आराधना को सुस्थिर बनाये रखना है।